बी० ए० पार्ट–1 हिन्दी साहित्य (प्रतिष्ठा)

डॉ० आशा कुमारी

अंशकालीन व्याख्याता

हिन्दी विभाग

मगध महिला कॉलेज, पटना

मोबाइल नम्बर–9304098602,7004661162

Email _ ashakumari2500@Gmail.com.

रीतिकाल के प्रमुख कवि

रीतिकाल में निम्नलिखित कवियों का योगदान रहा है। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है:–

(1) आचार्य केशवदासः–रीतिकाल संवत् 1700 ई से माना जाता है। इसका मतलब यह नहीं कि 1700 ई० से पूर्व रीति–ग्रंथ नहीं रचे गए है। कुछ लोगों का मानना है कि रीतिकाल का उदय हिन्दी साहित्य के साथ ही हुआ है, क्योंकि सूर की 'साहित्य लहरी' में भी अलंकारों का वर्णन है, और नंददास की 'रसमंजरी' में नायिका का वर्णन है। यद्यपि केशवदास जी के पूर्व कृपाराम, मोहनलाल तथा अकबरी दरबार के 'करनेस' आदि कई कवियों ने रस और अलंकारों के ऊपर ग्रंथ लिखे हैं, फिर भी साहित्यशास्त्र की विधिवत विवेचना कर हिंदी में रीतिकाल की परंपरा स्थापित करने वालों में केशवदासजी को ही प्रथम कवि माना जाएगा।

इनकी रचना 'रामचंद्रिका' के कारण और कुछ काल–विभाजन के कारण केशवदासजी को प्रायः भक्तिकाल में ही स्थान दिया गया है। इनका जन्म संवत् 1612 ई० में, और मृत्यु संवत् 1674 ई० में बताई जाती है। ये संस्कृत के अच्छे पंडित थे और आर्थिक सम्पन्नता से सम्पत्र होने के कारण, इनका अध्ययन भी सुचारू रूप से गतिमान रहा।

इनके प्रसिद्ध ग्रंथों में 'रसिक प्रिया' (संवत्1648):– इसमें रस–निरूपण, विशेषकर श्रृंगार और नायिका–भेद है।

कवि प्रिया (संवत् 1658) इसमें कवि के वर्ण्य–विषयों तथा अलंकारों का वर्णन है।

विज्ञान–गीता (संवत्1667) यह ग्रंथ 'प्रबोध चंद्रोदय नाटक' की रीति पर लिखा गया है। यह आध्यात्मिक ग्रंथ है। इनके दो ग्रंथ और भी है–'जहाँगीर जस चंद्रिका' और 'वीरसिंह देव चरित्र'।

कविवर केशवदास जी हमारे सामने कवि और आचार्य, दोनों ही रूपों में आते हैं। केशव की भाषा ब्रजभाषा है, किंतु इसके श्लेषादि

चिंतामणि त्रिपाठीः– आचार्य 'रामचंद्र शुक्ल' चिंतामणि त्रिपाठी को ही रीतिकाल का प्रवर्त्तक मानते हैं, क्योंकि इन्ही के पश्चात् रीति–ग्रंथों की अविरल धारा बहती रही। केशव और उनमें प्रायः पचास वर्ष का अंतर था। इस समय के अंतर के साथ कृछ साहित्यिक आदर्शो का भी अंतर था। केशव के दंडी और रूय्यक का अनुकरण कर उन्होंने अलंकारों में भेद नहीं रखा। केशव की कवि –प्रिया में पृथ्वी, आकाश आदि के भी अलंकार माने गए है। साहित्य में ऐसे अलंकारों को विशेषालंकार कहा गया है। चिंतामणि और उनके पीछे के कवियों ने चंद्रलोक और कुवलयानन्द का आधार लिया जिसमें काव्य के अलंकार अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखने लगे थे, अन्य अंलकारों से अलग हो गए थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने रस को भी प्रधान्ता दी।

ये तिकवाँपुर के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राहम्ण थे। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। इनका जन्म संवत् 1666 के निकट और कविता–काल संवत् 1700 ई० के आस–पास रही। इन्होंने 'काव्य विवेक', 'कविकुल–कल्पतरू' और 'काव्य प्रकाश' नाम के तीन ग्रंथ लिखे है। 'छन्द विचार' नाम का इन्होंने एक पिंगल ग्रंथ भी लिखा है।

बिहारी :– इनका जन्म पुराने ग्वालियर राज्य के वसुआ गोविंदपुर में माना गया है। ये जाति के माथुर ब्राहम्ण (चतुर्वेदी) थे। इनके वंशज बूँदी प्रांत में अब भी वर्तमान हैं। इनका जन्म संवत् 1660 ई० में बताया जाता है। ये जयपुर के महाराज जयसिंह के आश्रित थे, जिनकी प्रशंसा में इन्होंने दो–चार दोहे लिखे हैं। इन्होंने संवत् 1719 ई० में अपनी प्रसिद्ध 'सतसई' समाप्त की थी। जयपुर दरबार में एक दोहे से उन्होंने अपना प्रभाव जमा लिया था। महाराज जयसिंह अपनी नवेली रानी के प्रेम में फँस गए थे कि उन्हें राज–काज की भी चिंता न रही। मंत्री हैरान थे। तब बिहारी ने यह दोहा लिख भेजाः–

'नहि पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।

अली कली ही सौं विंध्यौ, आगे कौन हवाल।।

इस दोहे को पढ़ते ही महाराज की आँखें खुल गई। इस एक दोहे ने महाराज जयसिंह को अंतःपुर के हास–विलास से बाहर निकाल कर राज–काज में प्रवृत कर दिया। राजा के आश्रित होते हुए भी वे स्वतंत्र प्रकृति के महाकवि थे। देखिए, शाहजहाँ का पक्ष लेकर हिंदुओं के खिलाफ लड़ने वाले अपने आश्रयदाता को वाज की अन्योक्ति द्वारा कैसे शिक्षा दी है–स्वास्थ्य सुकृति न श्रम वृथा, देखि विहंग विचारि।

बाज पराए पानि पर, तु पंछीनु न मारि।।

यद्यपि बिहारी ने कोई लक्षण–ग्रंथ लिखा, फिर भी श्रृंगार संबंधी जितने विभव, अनुभव, संचारी हाव–भाव आदि हैं, सतसई में उन सभी के उदाहरण पाए जाते हैं। साथ ही उसमें

लक्षणा, व्यंजनादि शब्द–शक्तियों के भी उदाहरण पाए जाते हैं। दोहे केवल दोहे ही नहीं हैं, बल्कि उनमें कवि की सूक्ष्म निरीक्षण–शक्ति और आलौकिक प्रतिभा का पता चलता है। प्रत्येक दोहा एक पूर्ण शब्दात्मक चित्र है, जिसमें भाव तरंगें विविध रंगों में प्रस्फुटित होती है

मतिरामः– केशव, देव, पद्माकर आदि रीतिकाल के प्रधान कवियों के साथ इनकी गणना की जाती है। इनका जन्म तिकवाँपुर में संवत्1674 के लगभग हुआ था। ये बूँदी के महाराज के बहुत काल तक आश्रित रहे, और 'ललित–ललाम' नामक अलंकार–ग्रंथ लिखा। इनका रस संबंधी ग्रंथ 'रसराज' बहुत प्रसिद्ध है। रस और अलंकार की शिक्षा के लिए इनके दोनों ग्रंथ बड़े उपयोगी हैं। इन ग्रंथों के अतिरिक्त इन्होंने 'साहित्य–सार', 'लक्षण–श्रृंगार और 'मतिराम सतसई' तीन ग्रंथ और लिखे है।

कवित्त और आचार्यत्व :– यद्यपि इनके लक्षण कहीं–कहीं दूषित हैं, फिर भी वे सरल और सुबोध हैं। बड़े छंदों के अतिरिक्त दोहों में दिए हुए उनके लक्षण विशेष रूप स्पष्ट और सुबोध हैं। इनके उदाहरण केवल उदाहरण ही नहीं है बल्कि वे काव्यरस से परिपूर्ण हैं। ये बिहारी की भाँति 'दूर की कौड़ी' लाने तथा वक्तृता में इतने निपुण नहीं थे जितने अपने वचनों की सरलता और स्वाभाविकता में। बिहारी की भाँति न तो इनकी के विरह के कारण लूएँ ही चलने लगती हैं, और 'न औंधाई सीसी' बीच में ही सूख जाती है। ये पाठक को किसी अलौकिक संसार में न ले जाकर इसी लौकिक संसार की भूमि में स्वर्गीय दृश्य का दिखाने का उद्योग करते है। मतिराम की रचना में भाषा के माधुर्य के अतिरिक्त अर्थ गाम्भीर्य का विशेष गुण है।

एक उदाहरण द्रष्टव्य–बेलनिं को लपटाई रही है, तमालन की अवली अति कारी।

कोकिल, केकी, कपोतन के कुल, केलि करें अति आनंद भारी।।

सोच करै जनि होउ सुखी, 'मतिराम' प्रवीण सदै नरनारी।

मंजुल बंजुल कुंज में गोधन पुंज सखी! स्सुरारि तिहारी।।

भिखारीदासः– ये जाति के श्रीवास्तव कायस्थ थे और इनका निवास–स्थान प्रतापगढ़ के पास 'इयोगा' ग्राम था। इनका 'काव्य–निर्णय' नामक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इसमें काव्य प्रकाश की छाया है, किंतु इन्होंने स्वयं ही स्पष्ट कर दिया है कि इसमें उनके स्वतंत्र विचार हैं, उल्था नहीं है–'यही बात सिगरी कहत उथली होत'। इसके अतिरिक्त इनके अग्रलिखित ग्रंथों का और पता चलता है– रस सारांश, छंदार्णव पिंगल, श्रृगार–निर्णय, नाम प्रकाश, विष्णु–पुराण भाषा, छन्द प्रकाश, शत–रंज–शतिका और अमर प्रकाश।

इनका कविता काल संवत् 1785 ई० से संवत् 1807 ई० तक माना जा सकता है। इन्होंने अपने 'काव्य–निर्णय' में प्रायः सभी काव्यांगों पर विवेचन किया है। इसमें काव्य के

गुण और शब्द की शक्ति आदि पर भी विचार किया गया है। इन्होंने भाषा के संबंध में भी अनेक विचार प्रकट किए हैं।

रसलीनः– ये मुसलमान कवि हैं। इनका पूरा नाम सैयद गुलाम नबी था। इनका 'अंगदर्पण' नाम का ग्रंथ संवत् 1794 में लिखा गया था। ये सूक्तियों के चमत्कार के लिए बड़े प्रसिद्ध हैं। इनका एक दोहा 'अमिय हलाहल मद भरे, सेत श्याम रतनार' वाला प्रसिद्ध इन्हीं का है। लोग इसको भूल से बिहारी का समझते हैं। इनकी कविता के कुछ उदाहरण देखियेः–

मुख ससि निरख चकोर अरू, तन पानिप लखि मीन।

पद पंकज देखत भँवर, होत नयन रसलीन।।

पद्माकरः–ये बाँदा के रहने वाले तैलंग ब्राहम्ण थे। इनके पिता का नाम मोहन भट्ट था । ये पन्ना के महाराज हिंदूपति के गुरू थे। इनका जन्म संवत्1810 ई० में हुआ और 80 वर्ष की आयु में इनका स्वर्गवास हो गया। कई राज–दरबारों में इनका बड़ा मान था। रस के विद्यार्थियों में इनका 'जगद्विनोद' बहुत प्रसिद्ध है। यद्यपि इनको मिश्र–बंधुओं नव रत्नों में स्थान नहीं मिला है, फिर भी लक्षणों की सरलता और स्पष्टता तथा उदाहरणों की उपयुक्तता और उनके काव्यत्व के कारण इनका स्थान रीतिकालीन कवियों में बड़े महत्व का है। पद्माकर जी के संबंध में शुक्ल जी का मत इस प्रकार है–''लाक्षण्कि शब्दों के प्रयोग द्वारा कहीं–कहीं ये मन की अव्यक्त भावना को ऐसा मूर्तिमान कर देते हैं कि सुनने वालों का हृदय आप ही आप हामी भरता है। यह लाक्षणिकता भी इनकी बड़ी विशेषता है।''

'जगद्विनोद' के अतिरिक्त इनके आठ और ग्रंथ हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं–हिम्मत बहादुर विरूदावली, रामरसायन, प्रबोध–पचासा और गंगालहरी।

पद्माकर ने वीर–रस की भी कविता की है, किंतु वे उसमें उतने सफल नहीं हुए हैं जितने कि श्रृंगार रस की कविता में । उनकी रचनात्मक कविताओं में अनुप्रासों का प्राचुर्य पाया जाता है, जो कहीं –कहीं अरूचिकर सा हो जाता है। इनकी कविता के उदाहरणों को देखा जा सकता हैं– कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में,

क्यारिन में कलित क्लीन किलकंत है।

बैतालः– ये जाति के बंदीजन थे। 'शिवसिंह सरोज' में इनका जन्म संवत् 1734 बतलाया गया है। इन्होंने गिरधर के समान कुंडलियाँ लिखी हैं, जो विक्रम को संबोधित है, एक उदाहरण द्रष्टव्य है–बुधि बिनु करै बेपार, दृष्टि बिनु नाव चलावै।

सुर बिन गावै गीत, अर्थ बिनु नाच नचावै।